E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

पुरुष (विराट्) देवता का परिचय

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

विश्वकर्मन् सूक्त में सृष्टि के आदि जिस परमतत्त्व को विश्वकर्मन् नाम से व्यक्त किया गया है, पुरुष-सूक्त में उसी को पुरुष के नाम व्यक्त किया गया है। इस सूक्त के प्रथम तीन मन्त्रों में सृष्टि के मूलतत्त्व पुरुष की महिमा बताई गई है तथा शेष मन्त्रों में पुरुष के शरीर से जगत् की उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। प्रथम तीन मन्त्रों में पुरुष की सर्वव्यापकता तथा उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः पुरुष सूक्त में सृष्टि के आदि तथा परमतत्त्व को पुरुष नाम से अभिहित किया गया है।

पुरुष सूक्त में सृष्टि-उत्पत्ति से सम्बन्धित वर्णन किया गया है। इस सूक्त में आदिपुरुष के शरीर से देवताओं द्वारा सृष्टि का निर्माण किया जाना वर्णित है। इसमें सृष्टिरचना की प्रक्रिया को एक यज्ञ का रूप दिया गया है। कतिपय परिवर्तनों के साथ यह सूक्त सामवेद, शुक्ल यजुर्वेद तथा अथर्ववेद में भी उपलब्ध होता है।

(१) पुरुष का स्वरूप- पुरुष सहस्र शिरों, सहस्र नेत्रों एवं सहस्त्र पैरों वाला देव है। यहाँ पर 'सहस्र' शब्द उपलक्षण मात्र है। सहस्र का अर्थ असङ्ख्य है। वह इतना बड़ा है कि पृथिवी आदि लोकों को भी चारों तरफ से व्याप्त कर उनसे दश अंगुल परिमाण में अधिक बचा रहता है। कहने का तात्पर्य है कि वह सम्पूर्ण भूमण्डल को व्याप्त करने के पश्चात् भी कुछ अवशिष्ट रहता है। इस कथन का तात्पर्य यह है कि पुरुष ही सर्वव्यापी ईश्वर है जो संसार में सर्वत्र व्याप्त है तथा जीवों के सभी क्रिया-कलापों का निरीक्षण करते हुए उसे कर्मफल भी प्रदान करता है। यह सब अर्थात् वर्तमान, जो हो गया है अर्थात् भूत तथा जो आगे होगा अर्थात् भविष्य सब पुरुष ही है। वह अमृतत्व का स्वामी है तथा उसका भी स्वामी है जो अन्न से समृद्ध होता है। अगर हम यह कहें कि पुरुष की इतनी ही महिमा है तो उसकी

इयत्ता का सन्देह होने लगेगा। इसीलिये तीसरे मन्त्र में ऋषि इस बात का प्रतिपादन करता है कि पुरुष इतना ही नहीं है, जितना बताया गया। वह इससे भी महान् है।

(२) पुरुष का विभाजन- विराट् पुरुष का एक-चौथाई भाग मायोपहित होकर जन्म-मरण के बन्धन में पड़ता रहता है। उसका तीन-चौथाई भाग अपेक्षाकृत अत्यधिक उत्कृष्ट है तथा विनाश-रहित है एवं द्युलोक में स्थित है। उसका एक-चौथाई भाग ही जड़ और चेतन के रूप में व्यवस्थित होता है।

(३) पुरुष के द्वारा यज्ञ- सृष्टि की उत्पत्ति के लिए देवताओं, ऋषियों एवं साधकों ने जो यज्ञ किया, उसमें पुरुष को ही हवि के रूप में कल्पित किया। उस यज्ञ में घृत, ईंधन एवं हविष् के रूप में क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म और शरद् ऋतुओं का प्रयोग हुआ। इस यज्ञ को मानस-यज्ञ के प्रतीक के रूप में भी मानने की अवधारणा विद्वानों में व्याप्त है। इस मानस-यज्ञ में सत्त्व, रजस् एवं तमस् गुण ही प्रधान हैं। इन्हें ही आज्य, ईंधन और हवि के रूप में परिकल्पित किया गया। पुरुष सूक्त के छठे मन्त्र से लेकर चौदहवें मन्त्र तक आध्यात्मिक तथा आधिदैविक यज्ञ के माध्यम सर्वहुत पुरुष से विभिन्न तत्त्वों की उत्पत्ति बताई गई है। विभिन्न तत्त्वों की सृष्टि की कामना से देवताओं ने यज्ञ किया। उस प्रथम उत्पन्न पुरुष को बलि पशु के रूप में कुशाओं के आसन पर प्रतिष्ठित कर देवताओं ने उसका प्रोक्षण किया और उसके बाद यज्ञ सम्पन्न किया। उस यज्ञ से दधिमिश्रित घृत प्राप्त हुआ। तदनन्तर आकाश में रहने वाले पक्षियों को तथा जंगल में रहने वाले एवं ग्रामों में रहने वाले पशुओं को पैदा किया।

(४) पुरुष द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति– उसी पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई। उस पुरुष के एक चतुर्थांश में ही यह सम्पूर्ण विश्व है; उसका तीन-चतुर्थांश तो परात्पर, अव्यय तथा अक्षर रूप में है। उसका यह अव्यक्त रूप शाश्वत तथा अविनाशी है। अपने एक चतुर्थांश रूप से ही वह क्षर विश्व का निर्माण करता है। पशु पक्षी भी उसी से उत्पन्न हुए। पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से क्षत्रिय, उरुओं से वैश्य एवं दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। उस यज्ञपुरुष के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, उसके नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुआ; उसके मुख से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुये। तथा उसके प्राण से वायु उत्पन्न हुआ। उस यज्ञपुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ; शिर से आकाश उत्पन्न हुआ; दोनों पैरोंसे पृथिवी तथा श्रोत्र से दिशायें उत्पक्ष हुई। इसी प्रकार सब लोकों की सृष्टि यज्ञपुरुष से देवताओं ने की। देवों के निवास के

लिए द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी लोक की उत्पत्ति क्रमशः उस विराट् पुरुष के शिर, नाभि एवं पादों से हुई। ऋक्, यजुष, सामन् एवं छन्दस् की भी उत्पत्ति उसी से हुई। पुरुष-सूक्त के पाँचवें मन्त्र में दार्शनिक पद्धति द्वारा आध्यात्मिक सृष्टि की क्रमबद्ध प्रक्रिया बताई गई है। उस परम तत्त्व पुरुषरूप परमात्मा के एक चतुर्थांश से सर्वप्रथम विराट् उत्पन्न हुआ; विराट् से जीवात्मा उत्पन्न हुआ; उत्पन्न होते ही उसने अपने को देव, मनुष्य, तिर्यक् आदि रूपों में परमात्मा तथा विराट् से अलग कर लिया। इसके बाद जीवों के निवास के लिये पृथिवी बनी; पृथिवी के बन जाने पर जीवात्मा का विभिन्न शरीर बना।

यह विराट् पुरुष परमेश्वर का ही द्योतक है, जिसकी प्रतिध्वनि आगे गीता में दिखाई देती है-

द्वाविमौ पुरुषो लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।